पद्मसुन्दर की एक अज्ञात रचना : यदुसुन्दर

—डॉ० सत्यव्रत
गवर्नमेण्ट कॉलेज, श्री गंगानगर (राज०)

तपागच्छ के सुविज्ञात आचार्य तथा सम्राट् अकबर के आध्यात्मिक मित्र उपाध्याय पद्मसुन्दर का यदुसुन्दर-महाकाव्य उनकी नव प्राप्त कृति है। जैन साहित्य में कालिदास, माघ आदि प्राचीन अग्रणी कवियों के अनुकरण पर अथवा उनकी समस्यापूर्ति के रूप में तो कुछ काव्यों का निर्माण हुआ है, किन्तु यदुसुन्दर एकमात्र ऐसा महाकाव्य है, जिसमें संस्कृत-महाकाव्य-परम्परा की महानता एवं तुच्छता के समन्वित प्रतीक, श्रीहर्ष के नैषधचरित को रूपान्तरित (एडेप्ट) करने का दुस्साध्य कार्य किया गया है। महान् कृति का रूपान्तरण विष के समान है, जिससे आहत मौलिकता को पाण्डित्यपूर्ण क्रीड़ाओं की संजीवनी से भी पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता। पद्मसुन्दर ने श्रीहर्ष की दृप्त बहुश्रुतता, कृत्रिम भाषा तथा जटिल-दुरूह शैली के कारण वज्रवत् दुर्भेद्य नैषधचरित का उपयोगी रूपान्तर प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है किन्तु उसे अनेकशः, अपनी असहायता अथवा नैषध के दुर्धर्ष आकर्षण के कारण काव्य को संक्षेप करने को बाध्य होना पड़ा है जिससे यदुसुन्दर कहीं-कहीं रूपान्तर की अपेक्षा नैषधचरित के लघु संस्करण का आभास देता है। यदुसुन्दर में मथुराधिपति यदुराज समुद्रविजय के अनुज वसुदेव तथा विद्याधर-सुन्दरी कनका के विवाह तथा विवाहोत्तर केलियों का वर्णन है, जो प्रायः सर्वत्र श्रीहर्ष का अनुगामी है।

यदुसुन्दर अभी अमुद्रित है। बारह सर्गों के इस महत्त्वपूर्ण काव्य की एकमात्र उपलब्ध हस्तप्रति (संख्या २८५८, पुण्य), अहमदाबाद स्थित लालपत भाई दलपत भाई भारतीविद्या संस्थान में सुरक्षित है। प्रस्तुत विवेचन, ५४ पत्रों के इसी पत्रलेख पर आधारित है।

कवि-परिचय तथा रचनाकाल :

पद्मसुन्दर उन जैन साधुओं में अग्रगण्य थे, जिनका मुगल सम्राट् अकबर से घनिष्ठ सम्बन्ध था। उनकी मैत्री की पुष्टि पद्मसुन्दर के ग्रन्थों से भी होती है। अकबर शाहि शृंगार दर्पण से स्पष्ट है कि अकबर की सभा में पद्मसुन्दर को उसी प्रकार प्रतिष्ठित पद प्राप्त था, जैसे जयराज बाबर को मान्य था और आनन्दराय (सम्भवतः आनन्दमेरु) हुमायूँ को।[१] हर्षकीर्त्तिरचित धातुतरंगिणी के निम्नोक्त उल्लेख के अनुसार पद्मसुन्दर न केवल अकबर की सभा में समादृत थे, उन्हें जोधपुर नरेश मालदेव से भी यथेष्ट सम्मान प्राप्त था। सम्राट् अकबरने जो ग्रन्थ-संग्रह आचार्य हीरविजय को भेंट किया था, वह उन्हें तपागच्छीय पद्मसुन्दर से प्राप्त हुआ था। उनके दिवंगत होने पर वह ग्रन्थराशि सम्राट् के पास सुरक्षित थी। पद्मसुन्दर के परवर्ती कवि देव विमलगणि ने अपने हीर सौभाग्य में इस घटना तथा उक्त ग्रन्थ राशि में सम्मिलित प्रस्तुत यदुसुन्दर सहित नाना ग्रन्थों का आदरपूर्वक उल्लेख किया है।[२] हीरविजय अकबर से सम्वत् १६३९ में

[१] शृङ्गारदर्पण, प्रशस्ति, २।

[२] (अ) हीरसौभाग्य, १४.९१-९२, ९६।
(आ) वही, १४.९९, स्वोपज्ञटीका : काव्यानि···कादम्बरी-पद्मानन्द-यदुसुन्दराद्यानि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फतेहपुर सीकरी में मिले थे। पद्मसुन्दर का निधन निश्चय ही इससे पूर्व हो चुका था। पद्मसुन्दर का प्रमाणसुन्दर शायद सम्वत् १६३२ की रचना है। इस आधार पर पण्डित नाथूराम प्रेमी ने उनकी मृत्यु सं० १६३२ तथा १६३९ के बीच मानी है।[३] परन्तु यदुसुन्दर की प्रौढ़ता को देखते हुए यह पद्मसुन्दर की अन्तिम कृति प्रतीत होती है। हीर सौभाग्य में जिस मार्मिकता से सम्राट के भावोच्छ्वास का निरूपण किया गया है, उससे भी संकेत मिलता है कि पद्मसुन्दर का निधन एक-दो वर्ष पूर्व अर्थात् सं० १६३७-३८ (सन् १५८०-८१) के आस-पास हुआ था। यदि पद्मसुन्दर का देहान्त सं० १६३७-३८ में माना जाए, तो यदुसुन्दर को सम्वत् १६३२ (प्रमाण सुन्दर का रचना-वर्ष) तथा १६३८ को मध्यवर्ती काल में रचित मानना सर्वथा संगत होगा, यद्यपि काव्य में प्रान्त प्रशस्ति का अभाव है तथा अन्यत्र भी इसके रचनाकाल का कोई सूत्र हस्तगत नहीं होता।

उपाध्याय पद्मसुन्दर अपनी बहुमुखी विद्वता के कारण ख्यात हैं। उन्होंने काव्य, ज्योतिष, दर्शन, कोश, साहित्यशास्त्र आदि के ग्रन्थों से साहित्यिक निधि को समृद्ध बनाया है। शृङ्गार दर्पण के अतिरिक्त उनकी प्रायः अन्य सभी रचनाएँ अप्रकाशित हैं। पार्श्वनाथ काव्य के कुछ सर्ग 'सम्बोधि' में प्रकाशित हुए हैं।[४] देवविमल ने हीरसौभाग्य की स्वोपज्ञ टीका में पद्मसुन्दर के मालवरागजिनध्रुवपद से उद्धरण दिये हैं,[५] जो अभी तक अज्ञात तथा अनुपलब्ध है।

कथानक :

यदुसुन्दर की कथावस्तु यदुवंशीय वसुदेव तथा विद्याधर राजकुमारी कनका के विवाह तथा विवाहोपरान्त क्रीड़ाओं के दुर्बल आधारतन्तु पर अवलम्बित है। पौरांगनाओं के प्रति अपने उच्छृंखल आचरण के कारण, अग्रज समुद्रविजय की भर्त्सना से रुष्ट होकर वसुदेव देश छोड़ कर विद्याधर-नगरी में शरण लेता है। द्वितीय सर्ग में एक हंस, कनका के महल में आकर, 'यदुकुल के गगन के सूर्य' वसुदेव के गुणों का बखान करता है। वसुदेव का चित्र देखकर कनका अधीर हो जाती है। हंस उसकी मनोरथपूर्त्ति का वचन देकर उड़ जाता है। विरहव्यथित कनका को सच्चिदानन्द से सान्द्र ब्रह्म के अद्वैत रूप की तरह सर्वत्र वसुदेव दिखाई देता है। तृतीय सर्ग के प्रारम्भिक ३३ पद्यों में कनका के विप्रलम्भ का वर्णन है। धनपति कुबेर बाह्योद्यान में आकर वसुदेव को कनका के पास, उसका प्रणय निवेदन करने के लिये दूत बन कर जाने को प्रेरित करता है। कुबेर के प्रभाव से वह, अदृश्य रूप में, बेरोक अन्तःपुर में पहुँच जाता है (भवतु तनुः परैर-लक्ष्या ३.७२)। वहाँ वह वास्तविक रूप में प्रकट होकर कुबेर के पूर्वराग की वेदना का हृदयस्पर्शी वर्णन करता है और कनका को उसका वरण करने के लिये प्रेरित करता है (श्रीदं पतिं ननु वृणुष्व ३.१४७)। दूत उसे देवों की शक्ति तथा स्वर्ग के सुखों का प्रलोभन देकर, कुबेर की ओर उन्मुख करने का प्रयत्न अवश्य करता है पर कनका अडिग रहती है। दूत धनपति को छोड़ कर साधारण पुरुष (वसुदेव) का वरण करने के उसके निश्चय की बालिशता की कड़ी भर्त्सना करता है। उसकी अविचल निष्ठा तथा करुणालाप से दूत अन्ततः द्रवित हो जाता है और वह दौत्य को भूल कर सम्भ्रमवश अपना यथार्थ परिचय दे देता है। पति को साक्षात् देखकर कनका 'लज्जा के सिन्धु' में डूब गयी। वसुदेव वापिस आकर कुबेर को वास्तविकता से अवगत कराता है। चतुर्थ सर्ग में देवता, विभिन्न द्वीपों के अधिपति और पृथ्वी के दृप्त एवं प्रतापी शासक, कनका के स्वयंवर में आते हैं। कुबेर की अंगूठी पहनने से वसुदेव भी कुबेर के समान प्रतीत होने लगता है और सभा को दो कुबेरों का भ्रम हो जाता है। सर्ग के शेष भाग तथा पंचम सर्ग में वेत्रधारिणी दस आगन्तुक राजाओं का क्रमिक परिचय देती है। छठे सर्ग

[३] जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३९६।

[४] सम्बोधि, १०।१-४।

[५] हीरसौभाग्य, ११.१३५, टीका : 'जिनवचन पद्धतिरुक्ति चंगिम मालिनी' इति पद्मसुन्दर कृत मालवराग जिनध्रुवपदे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में वास्तविक कुबेर तथा कुबेर रूपधारी वसुदेव का वर्णन है। रूपसाम्य के कारण कनका उलझन में पड़ जाती है। अंगूठी उतारने से वसुदेव का यथार्थ रूप प्रकट हो जाता है। कनका माला पहनाकर उसका वरण करती है। सप्तम सर्ग में क्रमशः कनका तथा वसुदेव की विवाह-पूर्व सज्जा का वर्णन है। कनका का पाणिग्रहण, विवाहोत्तर भोज तथा नववधू की विदाई अष्टम सर्ग का विषय है। षड्ऋतु वर्णन पर आधारित नवम् सर्ग चित्रकाव्य के चमत्कार से परिपूर्ण है। दसवें सर्ग में अरिष्टपुर की राजकुमारी रोहिणी स्वयंवर में अन्य राजाओं को छोड़ कर, विद्याबल से प्रच्छन्न वसुदेव का वरण करती है जिससे उनमें युद्ध ठन जाता है। ग्यारहवें सर्ग में नवदम्पति के मथुरा में आगमन तथा सम्भोग क्रीड़ा का वर्णन है। बारहवें सर्ग में सन्ध्या, चन्द्रोदय तथा प्रभात के परम्परागत वर्णन के साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

यदुसुन्दर की रचना यद्यपि नैषध का संक्षिप्त रूपान्तर करने के लिये की गयी है तथापि घटनाओं के संयोजन में पद्मसुन्दर अपनी सीमाओं और उद्देश्य दोनों को भूल गये हैं। उनकी दृष्टि में स्वयंवर काव्य की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। काव्य के चौथाई भाग को स्वयंवर-वर्णन पर क्षय करने का यही कारण हो सकता है। निस्सन्देह यह उसके आदर्शभूत नैषध चरित के अत्यधिक प्रभाव का फल है। पांच सर्गों का स्वयंवर वर्णन (१०-१४) नैषध के विराट् कलेवर में फिर भी किसी प्रकार खप जाता है। यदुसुन्दर में, चार सर्गों में (४-६, १०), स्वयंवर का अनुपातहीन वर्णन कवि की कथाविमुखता की पराकाष्ठा है। अन्तिम सर्ग को नवदम्पति की काम-केलियों का उद्दीपक भी मान लिया जाए, नवें सर्ग का ऋतु वर्णन काव्यशास्त्रीय नियमों की खानापूर्ति के लिये किया गया प्रतीत होता है। दसवें सर्ग में रोहिणी के स्वयंवर का चित्रण सर्वथा अनावश्यक है। यह वसुदेव के रणशौर्य को उजागर करने की दृष्टि से किया गया है जो महाकाव्य के नायक के लिये आवश्यक है। ये सभी सर्ग कथानक के स्वाभाविक अवयव न होकर बलात् चिपकाये गये प्रतीत होते हैं। इन्होंने काव्य का आधा भाग हड़प लिया है। यदुसुन्दर का मूल कथानक शेष छः सर्गों तक सीमित है।

पद्मसुन्दर को प्राप्त श्रीहर्ष का दाय : यदुसुन्दर तथा नैषध चरित :

नैषध चरित की पाण्डित्यपूर्ण जटिलता तथा शैली की क्लिष्टता के कारण उत्तरवर्ती कवि उसकी ओर उस तरह प्रवृत्त नहीं हुए, जैसे उन्होंने कालिदास अथवा माघ के दाय को ग्रहण किया है। पद्मसुन्दर नैषध चरित के गुणों (?) पर मुग्ध थे पर उसका विशाल आकार उनके लिये दुस्साध्य था। अतः उन्होंने यदुसुन्दर में नैषध का अल्पाकार संस्करण प्रस्तुत करने का गम्भीर उद्योग किया है। कथानक की परिकल्पना और विनियोग में पद्मसुन्दर श्रीहर्ष के इतने ऋणी हैं कि यदुसुन्दर को, मित्र पात्रों से युक्त नैषध की प्रतिच्छाया कहना अनुचित न होगा।

यदुसुन्दर के प्रथम सर्ग में यदुवंश की राजधानी मथुरा का वर्णन नैषध चरित के द्वितीय सर्ग में विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर के वर्णन से प्रेरित है। श्रीहर्ष ने नगर-वर्णन के द्वारा काव्यशास्त्री नियमों को उदाहृत किया है, मथुरा के सामान्य वर्णन में उसकी स्वर्ग से श्रेष्ठता प्रमाणित करने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। द्वितीय सर्ग में नैषध के दो सर्गों (३,७) को रूपान्तरित किया गया है। कनका का सौन्दर्य चित्रण स्पष्टतः दमयन्ती के नख-शिख वर्णन (सप्तम सर्ग) पर आधारित तथा उससे अत्यधिक प्रभावित है। श्रीहर्ष की भाँति पद्मसुन्दर ने भी राजकुमारी के विभिन्न अंगों का एकाधिक पद्यों में वर्णन करने की पद्धति ग्रहण की है परन्तु उसका वर्णन संक्षिप्त तथा क्रमभंग से दूषित है, हालांकि यह नैषध की शब्दावली से भरपूर है। सर्ग के उत्तरार्द्ध में हंस का दौत्य नैषध के तृतीय सर्ग के समानान्तर प्रसंग का अनुगामी है। दोनों काव्यों में हंस को, नायिका को नायक के प्रति अनुरक्त करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका सौंपी गयी है जिसके फलस्वरूप वह अपने प्रेमी के सान्निध्य के लिये अधीर हो जाती है। दोनों काव्य में हंसों के तर्क समान हैं तथा वे अन्ततः नायकों को दौत्य की सफलता से अवगत करते हैं। तृतीय सर्ग में पद्मसुन्दर ने नैषध चरित के पूरे पाँच विशालकाय सर्गों को संक्षिप्त करने का घनघोर परिश्रम किया है। कनका के पूर्वराग के चित्रण पर दमयन्ती के विप्रलम्भ-वर्णन (चतुर्थ सर्ग) का इतना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गहरा प्रभाव है कि इसमें श्रीहर्ष के भावों की, लगभग उसी की शब्दावली में, आवृत्ति करके सन्तोष कर लिया गया है। श्रीहर्ष ने काव्याचार्यों द्वारा निर्धारित विभिन्न शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक विरह दशाओं को इस प्रसंग में उदाहृत किया है। पद्मसुन्दर का वर्णन इस प्रवृत्ति से मुक्त है तथा केवल ४७ पद्यों तक सीमित है। दूतकर्म स्वीकार करने से पूर्व वसुदेव को वही आशंकाएँ मथित करती हैं (३.५७-७०) जिनसे नल पीड़ित है (नैषध ५. ६६-१३७)। दूत का महल में, अदृश्य रूप में प्रवेश तथा वहाँ उसका आचरण दोनों काव्यों में समान रूप से वर्णित है।[६] श्रीहर्ष ने छठे सर्ग का अधिकतर भाग दमयन्ती के सभागृह, दूती की उक्तियों तथा दमयन्ती के समर्थ प्रत्युत्तर (६.५८-११०) पर व्यय कर दिया है; पद्म सुन्दर ने समान प्रभाव तथा अधिक स्पष्टता के साथ उसे मात्र चौबीस पद्यों में निबद्ध किया है। अगले ४७ पद्यों से वेष्टित तृतीय सर्ग का अंश नैषध के आठवें सर्ग का प्रतिरूप है। कुबेर के पूर्वराग का वर्णन (३.१२२-४१) नैषध चरित के आठवें सर्ग में दिक्पालों की विरह वेदना की प्रतिध्वनि मात्र है (८.६४-१०८)। अन्तिम साठ पद्य नैषध चरित के नवम् सर्ग का लघु संस्करण प्रस्तुत करते हैं। उनमें विषयवस्तु की भिन्नता नहीं है और भाषा तथा शैली में पर्याप्त साम्य है। दूत का अपना भेद सुरक्षित रखने का प्रयत्न, नायिका का उसका नाम-धाम जानने का आग्रह तथा दूत के प्रस्तावका प्रत्याख्यान, नायिका के करुण विलाप से द्रवित होकर दूत का आत्म-परिचय देना—ये समूची घटनाएँ दोनों काव्यों में पढ़ी जा सकती हैं। श्रीहर्ष को इस संवाद की प्रेरणा कुमार-सम्भव के पंचम सर्ग से मिली होगी। वहाँ भी शिव वेष बदल कर आते हैं और अन्त में अपना वास्तविक रूप प्रकट करते हैं। नैषध चरित तथा यदुसुन्दर में दमयन्ती और कनका दूत की उक्तियों का मुँहतोड़ जवाब देती हैं[७] जबकि पार्वती के पास बटु के तर्कों का समर्थ उत्तर केवल यही है—न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते (कुमार ५.८२)। कालिदास के उमा-बटु-संवाद में मनोवैज्ञानिक मार्मिकता है। श्रीहर्ष और पद्मसुन्दर इस कोमल प्रसंग में भी चित्र काव्य के गोरख धन्धे में फंसे रहते हैं। उन्हें रोती हुई दमयन्ती तथा कनका ऐसी दिखाई देती हैं, जैसे वे आंसू गिरा कर क्रमशः 'संसार' का 'ससार' तथा 'दांत' को 'दात' बनाती हुई बिन्दुच्युतक काव्य की रचना कर रही हों।[८]

पद्मसुन्दर के स्वयंवर-वर्णन पर नैषध का प्रभाव स्पष्ट है। श्रीहर्ष का स्वयंवर-वर्णन अलौकिकता की पर्तों में दबा हुआ है। उसमें पृथ्वीतल के शासकों के अतिरिक्त देवों, नागों, यक्षों, गन्धर्वों आदि का विशाल जमघट है, जिसका श्रीहर्ष ने पूरे पांच सर्गों में (१०-१४) जमकर वर्णन किया है। यदुसुन्दर का वर्णन भी इसके समान ही कथानक के प्रवाह में दुर्लंघ्य अवरोध पैदा करता है। पद्मसुन्दर ने नैषध में वर्णित बारह राजाओं में से दस को यथावत् ग्रहण किया है, पर वह नैषध की भांति अतिमानवीय कर्म नहीं है यद्यपि उसमें भी देवों, गन्धर्वों आदि का निर्भ्रान्त संकेत मिलता है। वर्णन की लौकिक प्रकृति के अनुरूप पद्मसुन्दर ने अभ्यागत राजाओं का परिचय देने का कार्य कनका की सखी को सौंपा है, जो कालिदास की सुनन्दा के अधिक निकट है। श्रीहर्ष ने रघुवंश के छठे सर्ग के इन्दुमती स्वयंवर की सजीवता को विकृत बनाकर उसे एक रूढ़ि का रूप दे दिया है। सातवें सर्ग में वर-वधू का विवाह-पूर्व आहार्य प्रसाधन नैषध के पन्द्रहवें सर्ग का, भाव तथा घटनाक्रम में इतना ऋणी है कि उसे श्रीहर्ष के प्रासंगिक वर्णन की प्रतिमूर्ति माना जा सकता है। कहना न होगा, नैषध का यह वर्णन स्वयं कुमारसम्भव के सप्तम् सर्ग पर आधारित है, जहाँ इसी प्रकार वर-वधू को सजाया जा रहा है। विवाह-संस्कार तथा विवाहोत्तर सहभोज के वर्णन (अष्टम् सर्ग)

[६] यदुसुन्दर, ३.७२-११४; नैषधचरित, ६.८-४४।

[७] यदुसुन्दर, ३.१५०-१५७ ; नैषध चरित, ६.२७-३२।

[८] संसारमात्मना तनोषि संसारमसंशयं यतः। नैषध०, ६.१०४।
तद्बिन्दुच्युतकमश्रुपातान्मां दांतमेव किमु दातमलं करोषि। यदुसुन्दर, ३.१६०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में पद्मसुन्दर ने अपने शब्दों में नैषध के सोलहवें सर्ग की आवृत्ति मात्र कर दी है। नैषध के समान इसमें भी बारातियों और परिवेषिकाओं का हास-परिहास बहुधा अमर्यादित है। खेद है, पद्मसुन्दर ने अपनी पवित्रतावादी वृत्ति को भूलकर इन अश्लीलताओं को भी काव्य में स्थान दिया है। अगले दो सर्ग नैषध से स्वतन्त्र हैं। अन्तिम दो सर्ग, जिनमें क्रमशः रतिक्रीड़ा और सन्ध्या, चन्द्रोदय आदि के वर्णन हैं, नैषध के अत्यधिक ऋणी हैं। कालिदास, कुमारदास तथा श्रीहर्ष के अतिरिक्त पद्म सुन्दर ही ऐसा कवि है जिसने वर-वधू के प्रथम समागम का वर्णन किया है। स्वयं श्रीहर्ष का वर्णन कुमारसम्भव के अष्टम् सर्ग से प्रभावित है। श्रीहर्ष ने कालिदास के भावों को ही नहीं, रथोद्धता छन्द को भी ग्रहण किया है। यदुसुन्दर के ग्यारहवें सर्ग में भी यही छन्द प्रयुक्त है। बारहवें सर्ग का चन्द्रोदय आदि का वर्णन, नैषध की तरह (सर्ग २१) नवदम्पती की सम्भोगकेलियों के लिये समुचित वातावरण निर्मित करता है। इसमें श्रीहर्ष के भावों तथा शब्दावली की कमी नहीं है। वस्तुतः काव्य में मौलिकता के नाम पर भाषा है, यद्यपि उसमें भी श्रीहर्ष की भाषा का गहरा पुट है।[९]

पद्मसुन्दर की काव्य प्रतिभा :

नैषधचरित के इस सर्वव्यापी प्रभाव के कारण पद्मसुन्दर को मौलिकता का श्रेय देना उसके प्रति अन्याय होगा। यदुसुन्दर में जो कुछ है, वह प्रायः सब श्रीहर्ष की पूँजी है। फिर भी इसे सामान्यतः पद्मसुन्दर की 'मौलिक' रचना मानकर कवि की काव्य प्रतिभा का मूल्यांकन किया जा सकता है।

पद्मसुन्दर के पार्श्वनाथ काव्य में प्रचारवादी स्वर मुखर हैं पर यदुसुन्दर में कवि का जो बिम्ब उभरता है, वह चमत्कारवादी आलंकारिक का बिम्ब है। यह स्पष्टतः नैषध के अतिशय प्रभाव का परिणाम है। पद्मसुन्दर का उद्देश्य 'ग्रन्थ ग्रन्थि' से काव्य को जटिल बनाना नहीं है, परन्तु उसका काव्य नैषध की मूलवृत्ति तथा काव्य रूढ़ियों से शून्य नहीं है। पद्मसुन्दर को श्रीहर्ष की तरह शृंगारकला का कवि मानना तो उचित नहीं है, न ही वह कामशास्त्र का अध्ययन करने के बाद काव्य रचना में प्रवृत्त हुआ है पर जिस मुक्तता से उसने विवाहोत्तर भोज में बारातियों के हास-परिहास और नवदम्पती की रति केलि का वर्णन किया है, वह उसकी रति विशारदता का निश्चित संकेत है। कनका का नखशिख वर्णन (२.१-४७) भी उसकी कामशास्त्र में प्रवीणता को बिम्बित करता है। अष्टम् सर्ग का ज्यौनार-वर्णन तो खुल्लमखुल्ला मर्यादा का उल्लंघन है। उसके अन्तर्गत बारातियों और परिवेषिकाओं की कुछ चेष्टाएँ बहुत फूहड़ और अश्लील हैं।[१०] श्रीहर्ष के समान इन अश्लीलताओं को पद्मसुन्दर की विलासिता का द्योतक मानना तो शायद उचित नहीं पर यह उसकी पवित्रतावादी धार्मिक वृत्ति पर करारा व्यंग्य है, इसमें दो मत नहीं हो सकते।

आदर्शभूत नैषधचरित की भाँति यदुसुन्दर का अंगी रस शृंगार है। पद्मसुन्दर को नवरसों का परम्परागत विधान मान्य है (नवरसनिलयैः को नु सौहित्यमेति २ ८३) पर वह शृंगार की सर्वोच्चता पर मुग्ध है। उसकी परिभाषा में शृंगार की तुलना में अन्य रस तुच्छ हैं (अन्य रसातिशायी शृंगार ६.५३)। शान्त

[९] विस्तृत विवेचन के लिये देखिये मेरा निबन्ध 'Yadusundara : A Unique Adaptation of Naisadhacarita', VIJ (Hoshiarpur), xx. 103-123.

[१०] अन्यः स्फुट स्फटिक चत्वर संस्थितायास्तन्व्या वरांगमनुबिम्बितमोक्षमाणः।
सामाजिकेषु नयनांचल सूचनेन सांहासिनं स्फुटमचीकरदच्छ हासः ॥ यदु०, ८.३७
वृत्तं निधाय निजभोजनेऽसौ सन्मोदकद्वयमतीव पुरः स्थितायाः।
संधाय वक्षसि दृशं करमर्दनानि चक्रे त्रपानतमुखी सुमुखी बभूव ॥ वही, ८.५२
प्रागर्थयन्निकृत एष विलासवत्या तत्संमुखं विटपतिः स भुजि क्रियायाम्।
क्षिप्त्वांगुलीः स्ववदने ननु मार्जितानलेहापदेशत इयं परितोऽनुनीता ॥ वही, ८.५४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रस को तो उसने जड़ता का जनक मान कर उसकी खिल्ली उड़ायी है (शान्तरसैकमन्दधी ४.४१)। यदुसुन्दर में यद्यपि शृंगार के दोनों पक्षों का व्यापक चित्रण मिलता है किन्तु कथानक की प्रकृति के अनुरूप इसमें विप्रलम्भ को अधिक महत्त्व दिया गया है। तृतीय सर्ग में कनका और कुबेर के पूर्वराग का वर्णन है, जो नैषध के क्रमशः चतुर्थ तथा अष्टम् सर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। निराश कनका की विप्रलम्भोक्तियाँ भी इसी सर्ग में समाहित हैं। परन्तु कवि ने श्रीहर्ष के पदचिह्नों पर चलकर, अपने विप्रयोग-निरूपण पर कल्पना-शीलता की इतनी मोटी पर्तें चढ़ा दी हैं कि विप्रलम्भ की वेदना का आभास तक नहीं होता। समूचा विप्रलम्भ-वर्णन अहोक्तियों का संकलन-सा प्रतीत होता है। ऐसे कोमल प्रसंगों में कालिदास तीव्र भावोद्रेक करता है पर पद्मसुन्दर संवेदना से शून्य प्रतीत होता है। उसपर अपनी नायिका की विरहवेदना का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसे रोती कनका आँसू गिरा कर 'दान्त' को 'दात' बनाती तथा प्रेम काव्य की रचना करती प्रतीत होती है (३.१६०, १७४)। निस्सन्देह यह नैषध का रूपान्तर की विवशता का परिणाम है पर इन क्लिष्ट कल्पनाओं और हथकण्डों के कारण ही उसका विप्रलम्भ चित्रण निष्प्राण तथा प्रभावशून्य बना है। उसमें सहृदय भावुक के मानस को छूने की क्षमता नहीं है, भले ही कनका क्रन्दन करती रहे या अपने भाग्य को कोसती रहे।

कुछ कल्पनाएँ अवश्य ही अनूठी हैं। यदि शरीर में छोटा-सा बाल भी चुभ जाए, उससे भी पीड़ा होती है। कनका को वेदना का अनुमान करना कठिन है क्योंकि उसके कोमल हृदय में छोटा-मोटा बाल नहीं, विशालकाय पहाड़ (भूभृत्—राजावसुदेव) घुस गया है। इस कल्पना का सारा सौन्दर्य श्लेष पर आधारित है। पद्मसुन्दर की यह कल्पना नैषध के एक पद्य की प्रतिच्छाया है।[११] पर पद्मसुन्दर ने 'भूभृत्' को समस्त पद में डाल कर कल्पना के सौन्दर्य और काव्यात्मक प्रभाव को नष्ट कर दिया है। अतः मूल की भाँति यह नायिका की व्यथा की व्यंजना नहीं करा सकती।

तनुतनूरुह जन्यधतो व्यथा भवति तत्र विलासवतीहृदि।
यदुजभूभृदसौ स्थितिमाश्रयद्यदुत बाधत एव किमद्भुतम् ॥
३.१२

निम्नोक्त पद्य कनका के विरह की तीव्रता को अधिक प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करता है। वह हृदय में धधकती ज्वाला को शान्त करने के लिये वक्ष पर सरस कमल रखना चाहती है पर वह कमल उसके अंगों का स्पर्श करे, इसके पूर्व ही उसकी गर्म आहों से जलकर बीच में ही राख हो जाता है। कल्पना सचमुच बहुत मनोरम है।

विरहदाहशमाय गृहाण निजकरेण सरोज मुरोजयोः।
द्वुतमपि श्वसितोष्मसमीरणादजनि मुम्मुर इत्यजहात्ततः ॥
३.२१

यह असहायता की पराकाष्ठा है। कहना न होगा, यह कल्पना भी नैषध चरित्र से ली गयी है।[१२]

यदुसुन्दर के ग्यारहवें सर्ग में सम्भोग शृंगार का मधुर चित्रण है। यद्यपि यह वर्णन कालिदास तथा श्रीहर्ष के प्रासंगिक वर्णनों से प्रेरित है, पर इसमें उन्हीं की भाँति वर-वधू के प्रथम समागम का मनोवैज्ञानिक निरूपण किया गया है। लजीली नववधू समय बीतने के साथ-साथ कैसे अनुकूल बनती जाती है, पद्मसुन्दर ने इसका हृदय-ग्राही अंकन किया है। भावसन्धि का यह चित्र नवोढा के लज्जा तथा काम के द्वन्द्व की सशक्त अभिव्यक्ति है।

स्थातुमेनमनिरीक्ष्य नाददात्सुभ्रुवो रतिपतिर्न च त्रपा।
वीक्षितुं वरयितर्यनारतं तद्दृशौ विदधतुर्गतागतम् ॥
११.४५

[११] निविशते यदि शूकशिखा पदे सृजति सा कियतीमिव न व्यथाम्।
मृदुतनोर्वितनोतु कथं न तामवनिभृत्त प्रविश्य हृदि स्थितः ॥ नैषध०, ४.११

[१२] स्मरहुताशनदीपितया तया बहु मुहुः सरसं सरसीरुहम्।
श्रयितुमर्धपथे कृतमन्तरा श्वसितनिर्मितमर्मरमुज्झितम् ॥ वही, ४.२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदुसुन्दर में वीर रस की भी कई स्थलों पर निष्पत्ति हुई। दसवें सर्ग का युद्धवर्णन दो कौड़ी का है। यह वीररसचित्रण में कवि की कुशलता की अपेक्षा उसके चित्रकाव्य में प्रेम को अधिक व्यक्त करता है। वैसे भी इस वर्णन में वीर रस के नाम पर वीर रसात्मक रूढ़ियों का निरूपण किया गया है जो तब तक साहित्य में गहरी जम चुकी थी। चतुर्थ तथा पंचम सर्ग में अभ्यागत राजाओं के पराक्रम के वर्णन में वीर रस के कुछ चित्र सुन्दर तथा प्रभावशाली हैं। वे बहुधा श्रीहर्ष के वर्णनों पर आधारित हैं। श्रीहर्ष की तरह पद्मसुन्दर का वीर रस दरबारी कवियों का 'टिपिकल वीर रस' है, जिसमें अतिशयोक्ति और शब्दछटा का आडम्बर दिखाई देता है। साकेत नरेश की वीरता के वर्णन वाले इस पद्य में वीर रस की यही प्रवृत्ति मिलती है।

एतद्दोर्दण्डचण्डद्युतिकरनिकर त्रासिता रातिराज-
स्तस्यौ यावद्विशंको द्रुमकुसुमलता कुंज पुंजे निलीय।
वीक्ष्यैतन्नामधेयांकित निशितशरध्वस्त पंचाननास्यो-
द्भूताशंकं करंकं व्रजतु विवशधीः कांदिशं कांदिशीकः॥
४.९२

पद्मसुन्दर की प्रकृति नैषध की तरह, वियोग अथवा संयोग की उद्दीपनगत प्रकृति है। तृतीय सर्ग का उपवन-वर्णन (३५-४४), जो नैषध के प्रथम सर्ग के उपवन-चित्रण (७६-११९) का समानान्तर है, वसुदेव की विरहवेदना को भड़काता है। नवें तथा बारहवें सर्ग के प्रकृति-वर्णन संयोग के उद्दीपन का काम देते हैं। ये क्रमशः वसुदेव तथा रोहिणी और कनका की सम्भोग क्रीड़ाओं के लिये समुचित पृष्ठभूमि निर्मित करते हैं। नवें सर्ग में ऋतुवर्णन के द्वारा शास्त्रीय नियमों की खानापूर्ति करने का प्रयत्न किया गया है। चित्रकाव्य पर समूचा ध्यान केन्द्रित होने के कारण पद्मसुन्दर यहाँ प्रकृति का बिम्बचित्र प्रस्तुत करने में सफल नहीं हुए हैं।

उपजीव्य नैषध के समान यदुसुन्दर के बारहवें सर्ग का प्रकृति-वर्णन दूरारूढ़ कल्पनाओं और अप्रस्तुतों के दुर्वह बोझ से आक्रान्त है। श्रीहर्ष के काव्य में पाण्डित्यपूर्ण उड़ान की कमी नहीं है पर उन्नीसवें और बीसवें सर्गों में वह सब सीमाओं को लांघ गया है। इन वर्णनों में उसने ऐसी विकट कल्पनाएँ की हैं, जो वर्ण्य विषय को स्पष्ट करने की अपेक्षा उसे धूमिल कर देती हैं। यदुसुन्दर में उन सबको आरोपित करना सम्भव नहीं था, फिर भी पद्मसुन्दर ने श्रीहर्ष के अप्रस्तुतों को उदारता से ग्रहण किया है। सन्ध्या के समय लालिमा धीरे-धीरे मिटती जाती है और तारे आकाश में छिटक जाते हैं, इस दृश्य के चित्रण में पद्मसुन्दर ने श्रीहर्ष के कई भावों की आवृत्ति की है। उसने पहले रूपक के द्वारा इसका वर्णन किया। सन्ध्या रूपी सिंही ने दिन के हाथी को अपने नखों से फाड़ दिया है। उसकी विशाल काया से बहता रक्त, सान्ध्य राग के रूप में, आकाश में फैल गया है और उसके विदीर्ण मस्तक से झरते मोती तारे बनकर छिटक गये हैं (१२.६)। श्रीहर्ष ने आकाश को मूर्ख के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसने सूर्य का स्वर्णपिण्ड बेच कर, बदले में, कौड़ियाँ खरीद ली हैं। पद्मसुन्दर ने इसके विपरीत अस्ताचल को व्यवहार कुशल क्रेता का रूप दिया है। उसने सन्ध्या की आग में शुद्ध सूर्य रूपी स्वर्णपिण्ड हथिया लिया है और उसके बदले में आकाश को निरर्थक कौड़ियाँ (तारें) बेच दी है।[१३] सूर्य के अस्त होने पर चारों ओर अंधेरा गिरने लगा है। कवि की कल्पना है कि काजल बनाने के लिये सूर्य रूपी दीपक पर आकाश का सिकोरा औंधा रखा गया था। काजल इतना भारी हो गया है कि वह विशाल सिकोरा भी उसके भार से दब कर नीचे गिर गया है। उसने दीपक को बुझा दिया है और वह काजल अन्धकार बन कर चारों तरफ बिखर गया है।[१४] श्रीहर्ष के अनुकरण पर पद्मसुन्दर ने सूर्य को बाज़ का रूप देकर सन्तुलन की सब सीमाओं को लांघ दिया है।[१५] इन क्लिष्ट कल्पनाओं ने पद्मसुन्दर के प्रकृतिवर्णन को ऊहात्मक बना दिया है।

[१३] नैषध०, २२-१३; यदुसुन्दर, १२-८।
[१४] नैषध०, २२-३२; यदुसुन्दर, १२-१५।
[१५] यदुसुन्दर, १२-७४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहले संकेत किया गया है कि पद्मसुन्दर की भाषा पर भी श्रीहर्ष का गहरा प्रभाव है। जहाँ उसने उपजीव्य काव्य का स्वतन्त्र रूपान्तर किया है, वहाँ उसकी भाषा, उसके पार्श्वनाथ काव्य की तरह, विशद तथा सरल है; परन्तु जहाँ उसे नैषध का, लगभग उसी की पदावली में पुनराख्यान करने को विवश होना पड़ा है, वहाँ उसकी भाषा में प्रौढ़ता का समावेश होना स्वाभाविक था।

सामान्यतः यदुसुन्दर की भाषा को सुबोध कहा जाएगा पर काव्य में नैषध के प्रभाव से मुक्त दो स्थल ऐसे हैं, जिनमें पद्मसुन्दर अपने उद्देश्य से भटक कर, चित्रकाव्य में अपना रचना-कौशल प्रदर्शित करने के फेर में फंस गये हैं। इन सर्गों में यदुसुन्दर का कर्त्ता स्पष्टतः माघ के आकर्षण से अभिभूत है, जिसने इसी प्रकार ऋतुओं तथा युद्ध के वर्णनों को बौद्धिक व्यायाम का अखाड़ा बनाया है। पद्मसुन्दर का षड ऋतुवर्णनवाला नवाँ सर्ग आद्यन्त यमक से भरपूर है। इसमें पद, पाद, अर्द्ध तथा महायमक आदि यमकभेदों के अतिरिक्त कवि ने अनुलोम-प्रतिलोम, षोडशदल कमल, गोमूत्रिका बन्ध आदि साहित्यिक हथकण्डों पर हाथ चलाया है। शिशुपालवध की तरह पद्मसुन्दर का युद्धवर्णन एक व्यंजनात्मक, द्वयक्षरात्मक तथा वर्ण, मात्रा, बिन्दुच्युतक आदि चित्रकाव्य से जटिल तथा बोझिल है, यद्यपि ऋतु वर्णन की अपेक्षा इसकी मात्रा यहाँ कम है। इनसे कवि के पाण्डित्य का संकेत अवश्य मिलता है पर ये काव्य की ग्राह्यता में बाधक हैं, इसमें सन्देह नहीं। निम्नांकित महायमक से कवि के यमक की करालता का अनुमान किया जा सकता है।

सारं गता तरलतारतरंगसारा
सारंगता तरलतार तरंगसारा।
सारंगता तरलतार तरंगसारा
सारंगता तरलतार तरंगसारा ॥९.२९

चित्रकाव्य का विकटतम रूप प्रस्तुत पद्य में मिलता है। इसमें केवल एक व्यंजन—क के आधार पर रचना के द्वारा कवि ने अपना पाण्डित्य बघारा है।

कुः कां ककंक कैका किकाकंकु कैकिका।
कां कां कककका काक ककाकुः कंकका कका ॥१०.४४

पद्मसुन्दर की भाषा में समास-बाहुल्य की कमी नहीं है पर उसकी सरलता को देखते हुए उसे वैदर्भी-प्रधान कहना उचित होगा। वैदर्भी की सुबोधता पद्मसुन्दर की भाषा की विशेषता है। अपनी क्लिष्टता के बावजूद नैषध की भाषा पदलालित्य से इतनी विभूषित है कि 'नैषधे पदलालित्यम्' उक्ति साहित्य में श्रीहर्ष के भाषा-गुण की परिचायक बन गयी। यदुसुन्दर के अधिकतर पद्यों में पदलालित्य मिलेगा, जो उसकी भाषा को नयी आभा प्रदान करता है। पदलालित्य अनुप्रास पर आधारित है जिसका काव्य में व्यापक प्रयोग किया गया है।

नैषधचरित वक्रोक्ति-प्रधान काव्य है। यदुसुन्दर भी नैषध की इस विशेषता से अप्रभावित नहीं है। उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, अतिशयोक्ति, समासोक्ति का स्वतन्त्र अथवा मिश्रित प्रयोग यदुसुन्दर की वक्रोक्ति का आधार है। सापह्नवोत्प्रेक्षा तथा सापह्नवातिशयोक्ति के प्रति पद्मसुन्दर का प्रेम नैषध से प्रेरित है। अप्रस्तुत प्रशंसा, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, पर्यायोक्त आदि वक्रोक्ति के पोषक अन्य अलंकार हैं, जिसका पद्मसुन्दर ने रुचिपूर्वक प्रयोग किया है। काव्य में प्रयुक्त उपमाएँ कवि की कुशलता की परिचायक है। पद्मसुन्दर ने अन्य अलंकारों के संकर के रूप में भी उपमा का प्रयोग किया है।

इस प्रकार यदुसुन्दर का समूचा महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि इसमें नवीन पात्रों के माध्यम से नैषध चरित का संक्षिप्त रूपान्तर प्रस्तुत किया गया है। मौलिकता के अभाव के कारण यदुसुन्दर ख्याति प्राप्त नहीं कर सका। सम्भवतः यही कारण है कि इसकी केवल एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है। फिर भी यदुसुन्दर तथा नैषध चरित का तुलनात्मक अध्ययन करना अतीव रोचक तथा उपयोगी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org